समाज विकासमाला

दानवीर कर्ण

सस्ता साहित्य मण्डल प्रकाशन

समाज-विकास-माला : १००

दानवीर कर्ण

बहादुरी और दानशीलता की कहानी

लेखक
देवराज 'दिनेश'

संपादक
यशपाल जैन
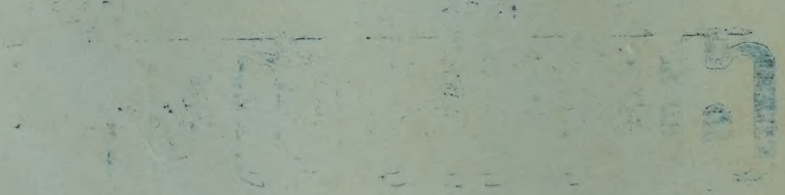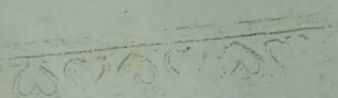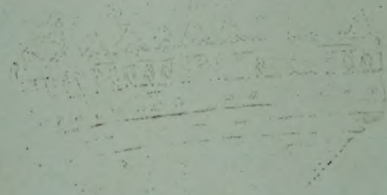
१९५९
सस्ता साहित्य मंडल-प्रकाशन

प्रकाशक
मार्तण्ड उपाध्याय
मंत्री, सस्ता साहित्य मंडल,
नई दिल्ली

पहली बार : १९५९
मूल्य
सैंतीस नये पैसे

मुद्रक
सुरेंद्र प्रिंटर्स प्रा० लि०,
डिप्टी गंज, दिल्ली

समाज-विकास-माला

हमारे देश के सामने आज सबसे बड़ी समस्या करोड़ों आदमियों की शिक्षा की है। इस दिशा में सरकार की ओर से यदि कुछ कोशिश हो रही है तो वही काफी नहीं है। यह बड़ा काम सबकी सहायता के बिना पार नहीं पड़ सकेगा।

बालकों तथा प्रौढ़ों की पढ़ाई की तरफ जबसे ध्यान गया है, ऐसी किताबों की मांग बढ़ गई है, जो बहुत ही आसान हों, जिनके विषय रोचक हों, जिनकी भाषा मुहावरेदार और बोलचाल की हो और जो मोटे टाइप में बढ़िया छपी हों।

यह पुस्तक-माला इन्हीं बातों को सामने रखकर निकाली गई है। इसमें कई पुस्तकें निकल चुकी हैं। इन सबकी भाषा बड़ी आसान है। विषयों का चुनाव बड़ी सावधानी से किया गया है। छपाई-सफाई के बारे में भी विशेष ध्यान रखा गया है। हर किताब में चित्र भी देने की कोशिश की है।

यदि पुस्तकों की भाषा, शैली, विषय और छपाई में किसी सुधार की गुंजाइश मालूम हो तो उसकी सूचना निस्संकोच देने की कृपा करें।

—मंत्री

पाठकों से

महाभारत की कथा में कर्ण की अपनी जगह है। वह वीर तो थे ही, पर दान देने में भी अपनी बराबरी नहीं रखते थे। इसीसे उन्हें 'दानवीर' कहा जाता था।

कर्ण के जीवन में जितने उतार-चढ़ाव आते हैं उतने महाभारत के दूसरे कम ही पात्रों के जीवन में आते हैं। उनकी कहानी इतनी मार्मिक और रोमांचकारी है कि पढ़ते-पढ़ते पाठकों के दिल हिल जाते हैं।

उनकी यह कहानी बड़े रोचक ढंग से इस पुस्तक में कही गई है। पढ़ने में आपको बड़ा आनंद आवेगा और पुस्तक पूरी करने पर आपको लगेगा कि आपने एक ऊंचे आदमी की कहानी पढ़ी है।

—संपादक

दानवीर कर्ण

: १ :

महाभारत की कहानी है। शूरसेन देश के राजा कुंतीभोज की कन्या का नाम कुंती था। उसने भगवान सूर्य की बहुत पूजा की। सूर्य प्रसन्न हुए और वरदान दिया, "तू मुझ जैसे प्रतापी पुत्र की मां बनेगी।"

समय पाकर वर फला और कुंती ने एक तेजस्वी पुत्र को जन्म दिया। कहते हैं पैदा होने के साथ ही उस बालक के कानों में कुंडल और शरीर पर कवच था।

ऐसे तेजस्वी और सुंदर पुत्र को देख कर माता की आत्मा खिल उठी। पर लोक-लाज का डर भी कम न था। अभी उसका विवाह कहां हुआ था ! सो उसने एक संदूक में डालकर उस बालक को गंगा की धारा में छोड़ दिया। वह संदूक नदी में बहता हुआ हस्तिनापुर पहुंचा। वहां गंगा के किनारे महाराज धृतराष्ट्र का सारथी अधिरथ और उसकी पत्नी राधा बैठे बातें कर रहे थे।

अधिरथ : चलो, चलकर मंदिर में भगवान की पूजा कर आयें।

राधा : जिंदगी बीत गई पूजा करते, पर भगवान ने मेरी एक न सुनी। मेरी गोद सूनी ही रही।

अधिरथ : किस्मत की बात है, फिर भी भगवान के

घर देर है, अंधेर नहीं ।

राधा : अरे, बूढ़े होने को आये । लगता है कि बच्चे को गोद में खिलाने की इच्छा लिये ही मर जायंगे । यह अंधेर नहीं तो और क्या है ? लेकिन तुम यह चादरा क्यों उतार रहे हो ?

अधिरथ : उधर देख राधा, वह गंगा की धारा में कोई संदूक बहता जा रहा है । उसे बाहर लेकर आता हूं । देखें तो सही, इसमें क्या है !

यह कहते हुए अधिरथ गंगा की धारा में कूद पड़े और संदूक को लेकर बाहर आये । उसे खोलकर देखा तो खुशी से झूम उठे ।

अधिरथ : राधा ! राधा ! मैंने कहा था न कि भगवान के घर देर है, अंधेर नहीं । आखिर भगवान ने हमारी सुन ही ली । देख तो सही, कितना सुंदर बालक है । लगता है जैसे सूर्य भगवान बालक के रूपमें धरती पर आ गये हों ।

राधा : सचमुच, भगवान की दुनिया में देर है, अंधेर नहीं । मेरी कोख से पैदा नहीं हुआ तो न सही, पर मेरी गोद में पलेगा तो । सोचती हूं, वह कैसी अभागिन मां होगी, जिसने ऐसा सुंदर बालक नदी की धारा में बहा दिया ।

अधिरथ : उसकी बेबसी तो वही जानती होगी । पर बहाते समय इतना ध्यान उसे फिर भी रहा कि यह डूब न जाय । संदूक में कैसा मुलायम बिस्तर बना रखा है ।

राधा : चलो, अब जल्दी से घर चलें । चलकर बेटा पाने की खुशी मनायें ।

अधिरथ : आज हमारी खुशी का ठिकाना नहीं । हमें बुढ़ापे में भगवान ने यह सहारे के लिए लकड़ी दी है । चलो राधा !

दोनों आनंद और खुशी में झूमते हुए घर आये ।

अधिरथ और राधा पुत्र को घर में लाकर खुशी से झूम रहे हैं ।

अपने दोस्तों और रिश्तेदारों को बुलाकर दावत दी । जन्म से ही कवच और कुंडल साथ होने से माता-पिता ने बालक का नाम वसुसेन रखा । दिन-पर-दिन बीतते गये, बालक दूज के चांद की तरह बढ़ने लगा । माता-

पिता की खुशी का ठिकाना न था। वसुसेन अब दस-बारह वर्ष का हो गया था।

: २ :

उधर बालक के जन्म के एक वर्ष बाद उसकी मां कुंती का विवाह हस्तिनापुर के राजा पांडु से हुआ। समय आने पर वह युधिष्ठिर, भीम और अर्जुन नामक तीन पुत्रों की मां बनी। पांडु की दूसरी पत्नी माद्री ने नकुल और सहदेव नामक दो पुत्रों को जन्म दिया। उसके बाद पांडु मर गये और माद्री उनके साथ सती हो गई। युधिष्ठिर तब छोटे थे, इसलिए राज्य का भार पांडु के अंधे बड़े भाई धृतराष्ट्र पर पड़ा। धृतराष्ट्र के सौ पुत्र थे। पांडु के पुत्र पांडव और धृतराष्ट्र के पुत्र कौरव कहलाते थे। इन सब राजकुमारों को शिक्षा देने के लिए आचार्य द्रोणाचार्य रखे गये। वह बड़े प्यार से इन सबको शिक्षा देते। वसुसेन भी राजकुमारों के साथ खेलता, उन्हीं के साथ शिक्षा लेता, लेकिन सूत-पुत्र कह कहकर वे उसपर फब्तियां कसते रहते। गुरुजी भी उसे ठीक ढंग से सिखलाते नहीं। वह मन-ही-मन दुखी होता। पर यह कोई एक दिन की बात नहीं थी, रोज की चर्चा थी। उधर अर्जुन और आचार्य-पुत्र अश्वत्थामा धनुष चलाने की विद्या में आगे बढ़ रहे थे। लंबी बाहों-वाला वसुसेन अपने-आपमें छटपटाकर रह जाता। वह इन दोनों से किसी बात में कम न था, लेकिन आचार्य उसे कुछ सिखायें तब न!

वह सोचने लगा—इस तरह तो मैं पीछे रह जाऊंगा। नहीं, नहीं, मैं महान धनुर्धारी बनूँगा, युद्ध की सब कलाएं सीखूँगा। तीर चलाने में कोई मुझसे न बढ़ सकेगा।

यह निश्चय करके वह घर से निकल पड़ा। उसने सुन रक्खा था कि भगवान परशुराम युग के सबसे बड़े धनुर्धर हैं। द्रोणाचार्य और भीष्म पितामह दोनों ही उनके शिष्य थे। साथ ही उसने यह भी सुन रखा था कि वह ब्राह्मणों के सिवा और किसीको युद्ध-विद्या नहीं सिखाते। बात यह थी कि क्षत्रिय भीष्म पितामह ने उनसे सबकुछ सीख कर उन्हींसे युद्ध किया था। इसीसे वह चिढ़ गये थे। लेकिन वसुसेन हार माननेवाला नहीं था। जैसे भी हो, यह शिक्षा लेनी ही है, यह सोचकर वह आश्रम में पहुंचा और भगवान परशुराम को प्रणाम किया।

परशुराम ने उसके गठे हुए शरीर और तेजस्वी मुख को देखा, तो देखते ही रह गये। फिर आशीर्वाद देकर बोले, "कहो पुत्र, कौन-सी इच्छा लेकर मेरे आश्रम में आये हो?" वसुसेन ने अपने मन की बात कही। यह भी कहा कि वह गरीब ब्राह्मण है। यह सुनकर परशुराम बोले, "ठीक है। मैं तुमको धनुष-विद्या की शिक्षा दूंगा। लंबी बाहोंवाले योद्धा को यह विद्या बड़ी जल्दी आ जाती है। तुम कुछ ही दिनों में युग के महान धनुर्धारी बनोगे।"

बस वसुसेन लगन से गुरु की सेवा करने लगा और

भगवान परशुराम भी बड़े स्नेह और प्यार के साथ उसे विद्या के गूढ़ मंत्र बताने लगे। कुछ ही वर्षों में वसुसेन धनुषविद्या भली-भांति सीख गया। तभी एक बड़ी विचित्र घटना घटी। एक दिन वसुसेन और भगवान परशुराम घने वन से होकर कहीं जा रहे थे। धूप बहुत तेज थी। बूढ़ा शरीर होने के कारण भगवान थक गये थे। यह देखकर वसुसेन ने उनसे कुछ देर एक पेड़ की छांह में आराम करने को कहा। फिर वह शीघ्र ही कुछ जंगली फल लेकर आया। वहीं झरने के तट पर बैठकर फल खाये। उसके बाद वसुसेन की जांघ का तकिया बनाकर भगवान परशुराम आराम करने लगे। अभी उन्हें सोये कुछ ही देर हुई थी कि वसुसेन की जांघ को एक विषैला कीड़ा काटने लगा। वसुसेन को पीड़ा हुई, पर उसने जांघ को हिलाया नहीं। गुरुदेव अभी-अभी सोये थे। कहीं उनकी नींद न टूट जाय। कीड़ा काटता रहा। वसुसेन पीड़ा को दबाता रहा। कुछ ही देर में वह कीड़ा जांघ के आर-पार हो गया। गर्म खून की धारा बह निकली। खून सिर पर लगने से भगवान् परशुराम चौंक पड़े।

"यह क्या हुआ, वत्स ?"

वसुसेन ने कहा, "भगवन्, कुछ देर पहले जांघ में एक कीड़ा काटने लगा था। मैंने जांघ इसलिए नहीं हिलाई कि कहीं आपकी नींद न खुल जाय। लेकिन धीरे-धीरे वह जांघ के आर-पार हो गया; खून की धारा बहने लगी और आपकी नींद उचट गई।"

परशुराम : (क्रोध से) सच-सच बता, तू किस कुल से है ? तू ब्राह्मण कभी नहीं हो सकता। ब्राह्मण में इतनी सहनशीलता कहां ! वह तो गुरु का सिर एक तरफ पटककर खड़ा हो जाता। इतना कठोर काम कोई क्षत्रिय ही कर सकता है। सच-सच बोल, नहीं तो मैं अभी तुझे शाप दे दूँगा।

वसुसेन : (नम्रता से) भगवन्, मुझे वाण-विद्या सीखने की बड़ी लगन थी। अपने मन की इस चाह को पूरा करने के लिए मैंने आपसे झूठ बोला। मैं महाराज धृतराष्ट्र के सारथी अधिरथ का पुत्र हूं।

परशुराम : नहीं-नहीं, यह भी झूठ है। तेरे सभी लक्षण तो राजवंश के हैं। तू किसी सारथी का पुत्र नहीं हो सकता।

वसुसेन : नहीं भगवन्, मैं सच-सच बता रहा हूं कि मैं अधिरथ सारथी का ही पुत्र हूं।

परशुराम : इसमें भी कोई बात है। खैर, मुझे इससे क्या ? तूने मुझे धोखा दिया है इसलिए मैं शाप देता हूं कि युद्ध-भूमि में अपने शत्रु के सामने तू मेरी विद्या भूल जायगा।

वसुसेन : आपकी जैसी इच्छा, भगवन् ! पर मेरी हार को लोग आपकी हार कहा करेंगे। परशुराम का शिष्य जब रणभूमि में हारेगा तो इसमें मुझपर नहीं, आपपर लांछन आयगा।

परशुराम : (कुछ शांत होते हुए) तुम ब्राह्मण नहीं हो, यही सोचकर विचलित हो उठा था। तुम
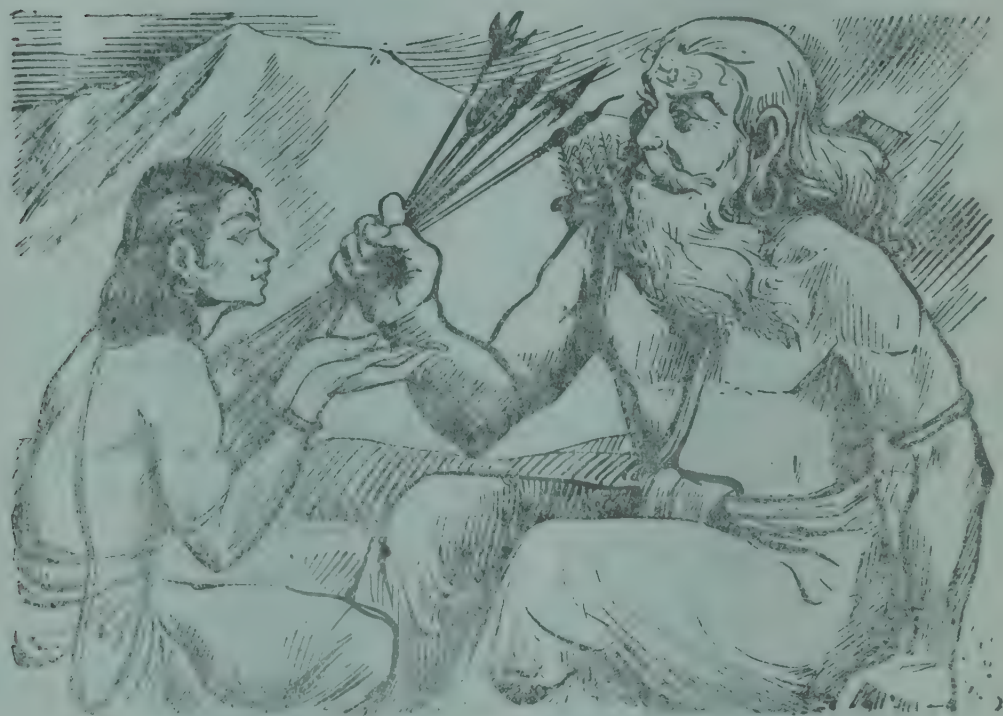
परशुराम वसुसेन को पांच दिव्य बाण देते हुए।

नहीं जानते क्षत्रिय भीष्म ने मुझसे शस्त्र-विद्या सीखकर मुझसे ही युद्ध किया था। तबसे मैंने प्रतिज्ञा की थी कि ब्राह्मणों के सिवा अब किसी और को युद्ध-विद्या नहीं सिखाऊंगा। किंतु तूने मेरे साथ छल किया और मैंने शाप दे दिया। सोचता हूं, बुरा हुआ। तेरे जैसा साहसी शिष्य बड़े भाग्य से मिलता है। ले, मैं तुझे यह पांच बाण देता

हूँ। इनसे तू युद्ध-भूमि में अपने पांच प्रबल शत्रुओं को मार सकेगा, और साथ ही शुभ-कामना करता हूं कि तू अपनी लगन से कई नये अस्त्र-शस्त्रों का निर्माता बनेगा। जाओ, घर जाकर अपने माता-पिता को प्रसन्न करो।

इस प्रकार गुरु की आज्ञा लेकर वह घर आया और अपने माता-पिता की सेवा में लग गया। गुरु के लिए कठोर पीड़ा सही। कहते हैं, इस कारण उसका नाम कर्ण हुआ।

: ३ :

एक दिन हस्तिनापुर की रंगशाला में बड़ी चहल-पहल थी। प्रजा, महाराज और राज्य के बड़े-बड़े व्यक्तियों के सामने गुरु द्रोणाचार्य के शिष्य कौरव और पांडव अपनी-अपनी कला दिखानेवाले थे। जनता की भीड़ उमड़ी पड़ रही थी। महर्षि व्यास, महाराज धृतराष्ट्र, पितामह भीष्म, आचार्य कृपाचार्य, महात्मा विदुर, राज-माता कुंती और गांधारी सब अपने-अपने आसनों पर विराज रहे थे। गुरु द्रोणाचार्य की आज्ञा से शस्त्र-परीक्षा शुरू हुई। एक के बाद एक वीर आ-आकर अपना रण-कौशल दिखाने लगे। कभी रथों पर, कभी घोड़ों पर, कभी हाथियों पर चढ़कर वे अपना-अपना करतब दिखाते।

फिर नकुल, सहदेव और दुःशासन ने खड्ग-युद्ध के करिश्मे दिखाये। इनके बाद भीम और दुर्योधन गदा-युद्ध के लिए उतरे। पहले अलग-अलग, फिर दोनों ने

आपस में लड़कर अपना कौशल दिखाया। देखते-देखते भयानक युद्ध छिड़ गया। लगता था, जैसे एक-दूसरे को मारकर ही चैन लेंगे। भीम अगर बल में अधिक थे तो दुर्योधन फुर्ती में। एक-दूसरे से कोई पार नहीं पा रहा था। कोई भयानक घटना न घट जाय, यह सोच आचार्य द्रोणाचार्य ने जबरदस्ती दोनों का युद्ध बंद करवाया।

फिर अर्जुन धनुर्विद्या का कौशल दिखाने के लिए उठा। उसने पहले तेज चाल से रथ को चलाकर बाणों से बाणों को काटकर दिखाया। जनता 'वाह वाह' कर उठी। पहले अग्नि-बाण चलाया, चारों ओर आग की लपटें दिखाई देने लग गईं, फिर उसने वारुणास्त्र चलाकर मेघ बुलाये, पानी बरसने लगा। आग बुझ गई, जनता भीगने लगी। फिर उसने वायव्यास्त्र चलाकर आंधी चला दी। हवा तेजी से चलने लगी, मेघ उड़ गये। लोगों के कपड़े उड़ने लगे। चारों ओर अर्जुन की जय के नारे लगने लगे। फिर उसने नाना प्रकार से माया-युद्ध के कौशल दिखाये। दूर रखी कौड़ी को बींध कर दिखाया। ककड़ी को काटकर दिखाया। इस तरह के बहुत-से करतब दिखाये। फिर एक बार अर्जुन की जय के नारों से रंगशाला गूंज उठी।

जब नारे कुछ धीमे पड़ रहे थे, लोग अपने घरों को जाने के लिए उठने ही वाले थे तभी रंगशाला के द्वार पर पहाड़ों की टक्कर जैसी ताल ठोंकने की आवाज़ सुनाई दी। लगता था जैसे पहाड़ फट रहा हो या आकाश में बादल गरज रहे हों। भीष्म, द्रोण, पांचों

पांडव, सौ भाइयोंसहित दुर्योधन सभी खड़े होकर आने-वाले की ओर देखने लगे। कर्ण आ रहा था। उसके शरीर पर कवच था और उसका मुख कुंडलों से दमक रहा था। हाथ में विशाल धनुष और कमर में खड्ग झूल रही थी। ऐसे लगता था जैसे महाबली शिव इस रूप में आये हों।

उसने आते ही द्रोणाचार्य और कृपाचार्य को प्रणाम किया और अर्जुन से बोला, "इसमें अभिमान की कोई बात नहीं है, अर्जुन! मैं तुमसे भी अच्छी तरह वे सब काम कर सकता हूं, जो तुमने अभी करके लोगों को दिखाये हैं।" और ऐसा ही हुआ। अवसर मिलते ही कर्ण ने वे सब काम करके दिखा दिये जो अर्जुन ने किये थे।

जनता कर्ण की जय के नारे लगाने लगी। पांडवों के मुख पीले पड़ गये। कौरवों की खुशी का कोई ठिकाना नहीं था। वे समझने लगे कि हमें भी अर्जुन जैसा वीर मिल गया। कर्ण ने उसी समय अर्जुन को युद्ध के लिए ललकारा। जनता भी यही चाहती थी, पर बड़े-बूढ़े खून-खराबा नहीं चाहते थे और शायद द्रोणाचार्य की पारखी आंखें पहचान गईं थीं कि कर्ण अर्जुन से बढ़कर ही है। द्रोणाचार्य के इन भावों को पढ़ कर आचार्य कृपाचार्य ने कहा--

"युवक, क्या मैं तुम्हारा नाम जान सकता हूं?"

कर्ण : आप मुझे जानते हैं, आचार्य। कभी मेरा नाम वसुसेन था, पर अब मेरा नाम कर्ण है।

कृपाचार्य : शायद तुम नहीं जानते कि द्वंद्व-युद्ध बराबर-

वालों में होता है। अर्जुन राजपुत्र हैं। उससे कोई राजपुत्र या राजा ही युद्ध कर सकता है। क्या मैं पूछ सकता हूं कि तुम किस राजवंश से हो ?

कर्ण : मैं किसी राजवंश का नहीं हूं, आचार्य ! और वीरता किसी राजवंश की दासी नहीं होती। मैं एक वीर हूं और दूसरे वीर को द्वंद्व-युद्ध के लिए ललकार रहा हूं।

दुर्योधन : ठहरो, आचार्य। अगर राजवंश का या राजा होना ही आवश्यक है तो मैं इस भरी सभा में कर्ण को अंग देश का राजा बनाता हूं। (ऊंची आवाज में) दुःशासन, राज-तिलक का सामान अभी ले आओ।

देखते-देखते कर्ण अंग देश के राजा बन गये। बदले में उन्होंने आजीवन दुर्योधन का मित्र बने रहने की प्रतिज्ञा की।

तभी उन्हें ढूंढ़ते हुए उनके पिता अधिरथ वहां पहुंचे। वह पुकार रहे थे——

"वसुसेन, वसुसेन, कर्ण, कर्ण !" आवाज सुनकर कर्ण राजसिंहासन से उठे और पिता के चरणों में प्रणाम किया। अधिरथ ने पुत्र के मस्तक पर राजतिलक लगा देख अपनी बांहों में भर लिया, उनकी आंखों से प्रेम के आंसुओं की धारा बह निकली। पांडव दल 'सूत-पुत्र', 'सूत-पुत्र' के नारे लगा रहा था और कौरव 'महाराज कर्ण की जय' पुकार रहे थे। दोनों ओर आवेश था।

कहीं झगड़ा न हो जाय यह सोचकर आचार्य द्रोणाचार्य ने सभा के समाप्त होने की घोषणा करदी।

लेकिन रंगशाला की इस घटना के कारण सबसे अधिक दुखी थीं राजमाता कुंती। वह कर्ण को पहचान गई थीं। पर किसीसे कुछ कह नहीं सकती थीं। इसीलिए कर्ण और अर्जुन के इस बढ़ते हुए वैर से वह परेशान थीं। उनका हृदय रो रहा था। दोनों ही तो उसके बेटे थे।

: ४ :

कर्ण के कौरव-दल में आजाने के कारण दुर्योधन को भीम और अर्जुन की चिंता नहीं रही। वह पांडवों का पूरा विरोधी बन गया था। उसने उन्हें लाक्षागृह में जलाने की कोशिश की पर वे बचकर भाग निकले और बरसों इधर-उधर भटकते रहे। अचानक एक दिन सुना कि द्रौपदी का स्वयंवर होनेवाला है। द्रौपदी पांचाल के राजा द्रुपद की बेटी थी। स्वयंवर की शर्त बड़ी कड़ी थी। नीचे परात में रखे तेल में खंबे में लटकती हुई मछली की छाया को देखकर जो वीर उसे अपने बाण से बींधेगा वह द्रौपदी को वरेगा।

उस स्वयंवर में देश-विदेश के अनेक महाराज, राजकुमार और धनुषधारी योद्धा आये हुए थे। लेकिन वे शर्त पूरी न कर सके।

तब द्रौपदी के पिता महाराज द्रुपद बोले, "धिक्कार है तुम्हारी वीरता को! एक भी तुममें ऐसा नहीं है जो

इस मछली को बींध सके ! तब फिर तुम लोग यहां क्या करने आये थे ?"

द्रुपद को इस तरह के वचन बोलते देख कर्ण तिलमिला उठे और बोले, "बस करो महाराज द्रुपद, मैं अभी इस मछली को बींधे देता हूं ।" यह कहकर उन्होंने उस विशाल धनुष को उठाकर उसपर बाण चढ़ाया ।

कृष्ण भी वहीं थे, उन्होंने जब कर्ण को धनुष पर बाण चढ़ाते देखा तो समझ गये कि वरमाला कर्ण के गले में पड़ेगी । वह परेशान हो उठे। वह नहीं चाहते थे कि द्रुपद और कौरवों में नातेदारी हो । वह ब्राह्मण-दल में बैठे अपने मित्र अर्जुन को पहचान गये थे । वह जानते थे कि कर्ण के बाद अर्जुन ही ऐसा वीर है जो मछली बींध सकता है । पर कर्ण को हटाया कैसे जाय ? अचानक उन्हें एक तरकीब सूझी । ऊंची आवाज में द्रौपदी को सुनाकर उन्होंने कहा, "पर कर्ण तो सूत-पुत्र है । क्या द्रौपदी का विवाह सूतपुत्र से होगा ?"

द्रौपदी यह सुनते ही बोल उठी, "मैं सूत-पुत्र से विवाह नहीं करूंगी ।"

अब कर्ण क्या करते ! लाचार वह दांत पीसते हुए धनुष छोड़कर अपनी जगह पर बैठ गये । इसके बाद अर्जुन ने उठकर मछली को बींधा और द्रौपदी ने उसे वरमाला पहना दी ।

इस विवाह के बाद पांडवों का बल बढ़ गया । तब कृष्ण, द्रुपद, भीष्म आदि के कहने पर महाराज धृतराष्ट्र ने पांडवों को आधा राज दे दिया ।

पर दुर्योधन चुप बैठनेवाला नहीं था। उसने पांडवों को जुआ खेलने को बुलाया और अपने मामा शकुनी की सहायता से उनको हरा दिया। शर्त के अनुसार उन्हें बारह साल का वनवास और एक साल का अज्ञातवास मिला। यदि वे अज्ञातवास में न पहचाने जा सके तो उनका राज्य उन्हें वापस मिल जायगा।

पर अज्ञातवास सफल हो जाने पर भी दुर्योधन ने उन्हें राज्य देने से इंकार कर दिया। फिर तो दोनों ओर से युद्ध की तैयारियां होने लगीं। कृष्ण शांतिदूत बनकर कौरवों की सभा में पहुंचे, पर दुर्योधन नहीं माने।

कृष्ण जब निराश लौट रहे थे तो उन्होंने कर्ण से मिल लेना जरूरी समझा। कर्ण और कृष्ण एक-दूसरे का बहुत आदर करते थे।

कृष्ण ने उनसे कहा, "यदि तुम चाहो तो यह भाई-भाई में होनेवाला महान युद्ध रुक सकता है। तुम नहीं जानते पांडव तुम्हारे सगे छोटे भाई हैं! कुंती तुम्हारी जननी है।"

कर्ण यह सुनकर चौंके, पर जब कृष्ण ने उन्हें सब बातें बताईं तो वह बड़े दुखी हुए। बोले, "तुमने यह सब बतलाकर ठीक नहीं किया। वैसे मुझे कुछ-कुछ संदेह तो था! पर अब इस बात से कोई लाभ नहीं।"

कृष्ण : लाभ कैसे नहीं, कर्ण। जब युधिष्ठिर को पता लगेगा कि कर्ण उनका बड़ा भाई है, तो वह अपना सब राजपाट तुम्हें सौंप देंगे।

कर्ण : और वह राज्य मैं फिर अपने मित्र दुर्योधन

को दे दूंगा ! नहीं-नहीं कृष्ण, मैं दुर्योधन का साथ नहीं छोड़ सकता। मैं मर जाऊंगा, पर 'मित्रता' शब्द को कलंकित नहीं करूंगा। केशव, तुम तो मेरे स्वभाव को अच्छी तरह जानते हो। फिर कैसे कहते हो··

कृष्ण : ओह ! तब तो यह युद्ध किसी तरह नहीं रुक सकता।

कर्ण : मेरा भी यही विचार है।

कृष्ण : अच्छा, तो विदा, कर्ण !

कर्ण : प्रणाम, कृष्ण।

: ५ :

दोनों ओर से तैयारियां शुरू हुईं। कृष्ण बहुत परेशान थे। वह जानते थे कि कर्ण के रहते पांडव युद्ध नहीं जीत सकते। कर्ण जितने बड़े योद्धा थे उससे भी कहीं बढ़कर दानी थे। उनके दरवाजे से कभी कोई याचक निराश नहीं लौटता था। कृष्ण ने इस बात का लाभ उठाने की सोची। उन्होंने राजमाता कुंती को समझाया कि वह कर्ण के पास जाय। कुंती कांप उठी। उसने कहा, "मुझे क्षमा करो, मैं उससे नहीं मिल सकूंगी। मैं उसके लिए मां नहीं, उसकी मौत सिद्ध हुई हूं ! मैं अब उसे किस मुंहसे कहूंगी कि मैं तुम्हारी मां हूं !"

कृष्ण : तो क्या तुम चाहती हो कि तुम्हारे बेटे फिर दर-दर की ठोकरें खाते फिरें। एक-एक दानेके लिए तरसें ! भीख मांगते-मांगते मर जायं ?

कुंती : नहीं-नहीं कृष्ण, अपने बेटों के लिए यह मैं कैसे सोच सकती हूं।

कृष्ण : तो जैसे भी हो, कर्ण को कौरवों से अलग करो। उसके उधर रहते युद्ध जीतना मुश्किल है।

कुंती : पर मेरा हृदय कह रहा है कि वह हमारा साथ नहीं देगा।

कृष्ण : जानता हूं पर सुनो! तुम उससे अपने पांचों बेटों के लिए अभय दान मांगना। दानी के द्वार से कुछ लाना ही चाहिए। और हां, परशुराम के दिये हुए पांचों बाण उससे मांग लाना।

कुंती : कृष्ण!

कृष्ण : तुम्हारे बेटों के लिए ही यह सब-कुछ कर रहा हूं।

कुंती : जैसी तुम्हारी इच्छा, केशव!

जिस समय कुंती कर्ण के पास पहुँची, उस समय वह सूर्य की उपासना कर रहे थे। सूर्य डूबते समय जैसे ही उनका मुंह पश्चिम की ओर हुआ, उन्होंने अपने सामने कुंती को खड़ देखा। प्रणाम करते हुए बोले—

कर्ण : कहिये यहां आने का कष्ट क्यों किया राजमाता?

कुंती : राजमाता नहीं, बेटा, मुझे केवल मां कहो। मैं तुम्हारी मां हूं।

कर्ण : मेरी मां, और तुम! यह कैसे हो सकता है? मेरी मां तो राधा है। उसने मुझे पाला-पोसा

और बड़ा किया है। कोई रानी मेरी मां नहीं हो सकती।

कुंती : नहीं-नहीं, ऐसा न कहो बेटा! मैंने तुम्हें अपनी कोख से पैदा किया है। मैं तुम्हें जन्म देनेवाली हूं।

कर्ण : और जन्मते ही गंगा में बहानेवाली भी तो तुम्हीं हो न?

मां-बेटा

कुंती : पिछली बातों को भूल जाओ, कर्ण! मैं उस समय बेबस थी। तुम नहीं जान सकते कि मैंने अपने जीवन के ये साल तुम्हारे लिए

कैसे रो-रो कर काटे हैं। कैसे अपने घावों को सहलाया है। (रोते हुए) इस अपनी अभागिनी मां को क्षमा कर दो, बेटा !

कर्ण : तुम भी नहीं जानतीं कि जबसे मैंने सुना है कि कुंती मेरी मां है, पांडव मेरे भाई हैं, मेरा दिल कितना बेचैन हो उठा है। सोचता हूं, कहीं मैं अपने साथियों को धोखा न दे दूं, राजमाता !

कुंती : मुझे मां कहो, कर्ण ! पांडव तुम्हारे छोटे भाई हैं। द्रौपदी सहित वे तुम्हारे दास होकर रहेंगे।

कर्ण : नहीं, राजमाता, मैं दुर्योधन को धोखा नहीं दे सकता। मैं मां के लोभ में अपना कर्त्तव्य नहीं भूल सकता। कर्ण कौरवों की ओर से ही लड़ेगा।

कुंती : तो क्या मैं निराश लौट जाऊं, कर्ण ?

कर्ण : नहीं, ऐसी बात नहीं। मुझे कोई और सेवा बताओ, राजमाता !

कुंती : कर्ण, मैं तो यही चाहती हूं कि मैं जबतक जिंदा रहूं, पांचों बेटों की मां बनी रहूं।

कर्ण : (सोचते हुए) ऐसा ही होगा। तुम्हारे पांच बेटे जीवित रहेंगे। मैं तुम्हें वचन देता हूं, अर्जुन को छोड़कर बाकी चार को मैं नहीं मारूंगा।

कुंती : अर्जुन मर गया तो ...

कर्ण : तो फिर मैं रहूंगा। मैं भी तो तुम्हारा ही बेटा हूं। और कोई आज्ञा?

कुंती : भगवान परशुराम के वे पांचों अचूक बाण!

कर्ण : (हंसकर) यह राजमाता कुंती नहीं, ऐसे लगता, है जैसे अर्जुन की रक्षा में कृष्ण बोल रहे हों। यह लो वे पांचों बाण। अब यदि कोई और इच्छा हो तो वह भी कहो।

कुंती : बस बेटा, जबतक यह दुनिया रहेगी, तेरे दान की कहानियां कहती रहेगी।

... ...

लेकिन दान की कहानी अभी लंबी है। एक दिन फिर दरवाजे पर याचक की आवाज सुनाई दी। इस बार ब्राह्मण के वेश में इंद्र आये थे। कर्ण ने प्रणाम करके पूछा। कहिये, आपकी क्या सेवा करूं?'

इंद्र : राजन्, बहुत दिनों से तुम्हारी और तुम्हारे दान की बड़ाई सुन रहा था। आज सोचा, चलकर तुम्हारे दर्शन कर आऊं!

कर्ण : आज्ञा कीजिये। मैं आपको निराश नहीं लौटाऊंगा।

इंद्र : मुझे इन चीजों की जरूरत नहीं है, कर्ण। मैं तुम्हारे ये कवच-कुंडल दान में लेने आया हूं।

कर्ण : मगर ये तो मेरे शरीर के अंग हैं। इन्हें मैं अपने शरीर से अलग कैसे कर सकता हूं।

इंद्र : तुम नहीं देना चाहते तो मना कर दो, मैं खाली हाथ लौट जाऊंगा ।

कर्ण : नहीं देवराज इंद्र, आपको निराश नहीं लौटना पड़ेगा । मैं कवच-कुंडल का दान अवश्य दूँगा । किंतु आप अपने असली रूप में आ जायं तो मुझे खुशी होगी ।

इंद्र : हुं ‥ लगता है भगवान सूर्य ने तुम्हें सब बतला दिया है । लो, मैं असली रूप में आ गया । आज देवता मनुष्य के सामने भिखारी के रूप में खड़ा है ।

कर्ण : मुझे इस बात की बहुत खुशी है इंद्र, कि आज फिर मनुष्य जीता ।

यह कहकर कर्ण ने खड्ग से कवच-कुंडल अपने शरीर से काटकर इंद्र को दे दिये । रक्त की धारा बहने लगी । इंद्र चकित देखते रह गये । बोले, "धन्य हो तुम, और धन्य है तुम्हारी दानवीरता । जबतक संसार है तबतक तुम्हारा यश रहेगा । हम चाहते हैं कि तुम भी इसके बदले में कुछ मांगो ।"

कर्ण : नहीं इंद्र, मैं याचक से कैसे मांग सकता हूं ।

इंद्र : यह भी तो याचक की मांग है ।

कर्ण : जैसी आपकी इच्छा, तब आप मुझे अपनी अमोघ शक्ति दे दें ।

इंद्र : यह लो । मगर यह एक आदमी को ही मारकर मेरे पास लौट आयगी ।

: ६ :

आखिर युद्ध शुरू हुआ। सात दिन घोर युद्ध करके भीष्म पितामह शर-शैया पर लेट गये। द्रोणाचार्य सेना-

सेनापति कर्ण

पति हुए। तब एक रात दोनों सेनाओं में भयानक युद्ध छिड़ा, यह माया-युद्ध था, कर्ण कौरव सेना की रक्षा कर रहे थे, उनके सम्मुख कोई भी पांडव-पक्ष का वीर नहीं ठहर सक रहा था।

तब कृष्ण के इशारे पर भीम के पुत्र घटोत्कच ने राक्षसी-युद्ध शुरू किया। राक्षसी माया का विस्तार

देख कौरव-सेना घबरा गई। बड़े-बड़े कौरव सेनापति युद्ध-क्षेत्र से लौटने लगे। यह देख दुर्योधन ने कर्ण से कहा, "कर्ण! इसे शीघ्र मारो, नहीं तो यह हमारी सारी सेना का विनाश कर देगा।"

इच्छा न होते हुए भी कर्ण ने इंद्र की दी हुई अमोघ शक्ति घटोत्कच पर छोड़ दी। शक्ति घटोत्कच को चीरती हुई आकाश में विलीन हो गई। कौरव-सेना खुशी से नाचने लगी; पांडव अपने वीर-पुत्र की मृत्यु पर रोने लगे। किंतु कृष्ण खुश थे। वह जानते थे कि मैंने घटोत्कच का बलिदान कराके अर्जुन की रक्षा की है।

द्रोण भी कौरवों की रक्षा न कर सके। उनकी मृत्यु के बाद कर्ण कौरवों के सेनापति बने। वह दो दिन सेनापति रहे। इस युद्ध के दौरान में ऐसे अवसर आये जब वे भीम, नकुल, सहदेव और युधिष्ठिर को मार सकते थे, पर उन्होंने कुंती को दिये वचन का पालन किया। अंत में एक दिन कर्ण और अर्जुन में भयानक युद्ध छिड़ा।

दोनों दल इस युद्ध को देखने के लिए अपना-अपना युद्ध बंद करके खड़े हो गये। दोनों एक-दूसरे पर भयानक बाण चला रहे थे। आज कर्ण के सामने अर्जुन की एक नहीं चल रही थी।

सहसा अर्जुन को मारने की इच्छा से कर्ण ने सर्पास्त्र छोड़ा। पांडव-सेना हाहाकार कर उठी। अर्जुन ने उसे काटने को कई बाण छोड़े पर वह अजेय शक्ति तेजी से आगे बढ़ रही थी। अर्जुन का जीवन खतरे में था। तभी,

कृष्ण ने अपना अनोखा कौशल दिखाया। उन्होंने अपने रथ के घोड़ों को बिठा दिया। सर्पास्त्र का निशाना चूक गया। वह अर्जुन के गले की जगह उसके मुकुट और रथ को तोड़ता हुआ आकाश में चला गया। अर्जुन बच गये, पांडव-सेना खुशी से नाच उठी। कर्ण दांत पीसकर रह गये।

तभी कर्ण के रथ का पहिया कीचड़ से भरे एक गड्ढे में धंस गया। अर्जुन से कुछ देर युद्ध बंद करने को कह कर नीचे उतर कर रथ का पहिया निकालने लगे।

यह देख कर कृष्ण ने अर्जुन से कहा, "तुम हाथ-पर-हाथ रखे क्या देख रहे हो? यही अवसर है जब तुम कर्ण का वध कर सकते हो। यदि वह फिर एक बार रथ पर चढ़ गया तो उसे यमराज भी नहीं मार सकेंगे।"

एक बार तो अर्जुन झिझके, परंतु कृष्ण के बार-बार कहने पर उन्होंने रथ का पहिया निकालते हुए कर्ण पर वार करके उन्हें मौत के निकट पहुंचा दिया।

कर्ण पृथ्वी पर गिर पड़े। कौरव-सेना में हाहाकार मच गया। पांडव-सेना शंख बजाने लगी। पांडवों की रक्षा के लिए कृष्ण ने यह सब करवाया तो जरूर था, पर वह आज अपने मित्र कर्ण की मृत्यु पर बहुत दुखी थे। उनकी आंखों से आंसू बहने लगे। यह देख अर्जुन ने कहा :

"क्या बात है, केशव! कर्ण को मारकर आज जितना मैं खुश हूं, तुम उतने ही उदास हो?"

कृष्ण : अर्जुन, आज तुमने लाखों दीन-दुखियों को अनाथ कर दिया है। तुमने आज गरीबों से उनका अन्नदाता छीन लिया है। आज इस युग का सबसे बड़ा दानी इस दुनिया से जा रहा है।

अर्जुन : इसमें ऐसी बड़ी बात क्या है ? हम भी खजांची से कहकर जनता में धन बंटवा दिया करेंगे। सुनकर कृष्ण हँस पड़े। मनमें सोचा, अर्जुन का अभिमान चूर करना होगा। उन्होंने बूढ़े ब्राह्मणों का वेश बनाया और अर्जुन को लेकर दानी कर्ण की अंतिम परीक्षा लेने के लिए पहुंचे। कर्ण आखिरी सांसे ले रहे थे। रात का गहरा सन्नाटा था। कृष्ण ने कहा,"देख ब्राह्मण, मैंने राजा कर्ण के दान की बहुत-सी कहानियाँ सुनी थीं। यहाँ आया तो पता चला, दानी घायल होकर युद्ध-भूमि में पड़े हैं। सोचा वहीं चलूँ, मुझे उनसे दान लेना है। सुना है, उनके हाथ से लिया हुआ दान फलता खूब है।"

अर्जुन : तुम भी तो हठी हो, भला इतने बड़े मैदान में उनका कहां पता लगेगा।

कर्ण : (ऊंची आवाज) ब्राह्मण देवता, इधर, तनिक इधर। तुम्हारा सेवक इधर पड़ा है।

कृष्ण : दानी कर्ण की जय हो !

कर्ण : मैं अपने जीवन की आखिरी सांसें गिन

रहा हूं। कहो आपको क्या चाहिए ?

कृष्ण : राजन् ! मुझे अपनी बेटी का विवाह करना है। थोड़े-से सोने की जरूरत है।

कर्ण : ब्राह्मण देवता, आप मेरे घर चले जायं। रानी तुम्हें जितना चाहोगे उतना सोना दे देंगी।

कृष्ण : नहीं राजन्, मुझे तुम्हारे ही हाथ से दान लेना है, नहीं तो दुनिया में राजाओं का अकाल थोड़े ही है।

कर्ण : पर ब्राह्मण, यहां तो मेरे पास देने को कुछ भी नहीं है।

अर्जुन : तब चलो भाई, किसी और का मुंह चलकर देखें !

कर्ण : हे भगवन् ! तेरी भी कैसी महिमा है ! जीवन के आखिरी क्षण में याचक वापस लौट रहा है। (सोचकर) ठहरो ब्राह्मण, मुझे याद आया। लाओ यह ईंट मुझे दो, मैं अपने सोने के दांत तुम्हें देता हूं।

अर्जुन : तो क्या महाराज, आपने हमें हत्यारा समझ लिया है।

कर्ण : क्षमा करो ब्राह्मण देवता, भूल हुई। (सरक-कर ईंट उठाते हैं और सोने से मढ़े दांत तोड़ते हैं) लो ब्राह्मण, अब तो प्रसन्न हो न !

अर्जुन : खून से भरे हुए गहने और मुंह से निकले

हुए जूठे दांत दान में देते तुम्हें लाज नहीं आती। इन्हें पानी से धोकर दो।

कर्ण : पानी यहां कहां मिलेगा! देखो, तनिक मुझे मेरा धनुष-बाण ही दे दो!

हाथ और एक पैर की सहायता से बाण चलाते हुए कर्ण।

अर्जुन : ओह! तो क्या आपके हम नौकर हैं?

कर्ण : क्षमा देवता! मैं स्वयं ही घिसट-घिसटकर धनुष पकड़ लेता हूं।

अर्जुन : तुम्हारा एक हाथ तो काम ही नहीं देता।

कर्ण : एक हाथ और पांव से बाण चलाऊंगा।

ऐसा ही हुआ। कर्ण ने धरती पर बाण मारा। जल की निर्मल धार बहने लगी। सोना धोकर उसने ब्राह्मणों को दे दिया। अर्जुन और कृष्ण के सिर महा-दानी के चरणों पर झुक गये। ऐसे महाबली और महा-दानी का नाम युग-युगों तक अमर न रहेगा तो किसका रहेगा!

सैंतीस नये पैसे